आखर हिंदी पत्रिका ; e-ISSN-2583-0597 खंड 4/अंक 4/दिसंबर 2024
Received: 15/12/2024; Accepted: 20/12/2024; Published: 30/12/2024

यात्रा वृतांत

मालाबार के साये में

- सुभाष बिश्नोई

सुभाष बिश्नोई, **मालाबार के साये में**, आखर हिंदी पत्रिका, खंड 4/अंक 4/दिसंबर 2024,(316-321)

१

रेलगाड़ी के डिब्बे में बैठकर मालाबार घाट की खूबसूरती को निहारना आकस्मिक पर रोमांचक था। यात्रा का सबब था शोध के मसले से कर्नाटक जाना। मगर भलीभांति परिचित थे कि असल वजह थी दक्षिण की खूबसूरती, जो हर किसी को अपने वश में करके अपना बना लेती है। और इस सब कि शुरुआत आधे दशक पहले हुई जब परास्नातक करने के लिए ऐतिहासिक शहर पुड्डुचेरी जाना पड़ा।

बाकी सब लोगो कि तरह हिंदुस्तान के उत्तरी भाग से दक्षिण आना अपने कई अन्धविश्वाशो से सामना करने जैसा था। जिंदगी में पहली बार ख्याल हुआ कि साउथ की फिल्मे जिनको देखकर बचपन (दरअसल किशोरावस्था) गुजरा, वो महज तेलगू प्रदेश का सिनेमा था। प्रायद्वीप की रेलयात्रा के दौरान पाया कि, अगर चायवाले को ये बताना हो कि तुमको चाय नहीं चाहिए या फिर ना बोलना हो तो, तेलगू प्रान्त में *राद्दू*, हैदराबाद में *नको*, तमिलनाड और केरल में *इल्ले* या *इल्ला* जैसे लफ्ज़ो का उपयोग करना होता है। बड़ा ठगा हुआ सा महसूस हुआ जब पता चला कि दक्षिण भारत की अवधारणा उतनी ही कृत्रिम है जितनी उत्तर भारत की। ऐतिहासिक सभ्यताएँ और संकृतियाँ - तमिल, तेलगू, मलयाली और कर्नाटकी - को दक्षिण भारत के एक कंटेनर में मनो रख दिया गया हो । आम जन को समझाया गया कि दक्षिण के सब लोग एक ही टेबल पर बैठते है, कुर्सी ही एक है, थाली और खाना भी एक ही है। मैं सोचता रहा कि हमको क्यों बताया जाता रहा कि दक्षिण की टेबल पर चार-पांच लोग बैठते है? दूर से ऐसा लगता है मानो लंगोटिया यार हो, मगर बनती आपस में

उनकी भी नहीं। हालाँकि जब भी कोई उत्तर की टेबल से 'कृपालु' आता है, पांचो मिलकर महाभारत करने को उतारू रहते है। महाभारत और रामायण से याद आया की उत्तर वाले अक्सर उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम की ओर चले जाया करते है। दरअसल उनके उत्तर में बसने वाले भी ऐसा करते आये है। सुनाने को ये भी मिला है कि उत्तर में होने के मायने है बाकी कहीं भी नहीं होना । ना पूर्व में होना, दक्षिण में तो कतई नहीं होना, हालाँकि कभी-कभी पश्चिम में होना। बहरहाल, या तो उत्तर में होना, या उत्तरोत्तर होना, या फिर आसमान में होना। कौतूहल ये भी आया कि हमको ये सिखाया किसने ? संभवत पेरियार ने । लोगो का मानना है कि नेहरू, गाँधी और राष्ट्रवादियों ने सिखाया हो। मगर हमारे साथ चिलम पिने वाले दोस्त का ये मानना है कि साज़िस बड़ी रही होगी - पुजारियों और पण्डो की साज़िस है इतिहास काल से । बुजुर्गो का मत भी तर्कसंगत लगा मुझे इस सन्दर्भ में, जिनका मानना है कि इतिहास चश्मा होता है, दूर की नज़र का, पास की नज़र का, दोनों का, फैशन वाला भी। उनका ये भी मानना है कि चश्मा कुछ ही पीढ़ियों पहले आया है बाजार में, पहले लोगो को जरुरत नहीं पड़ा करती थी। खैर, बाद में पता चला कि बुजुर्गो का चश्मे से मतलब था नज़र से। हैरत हुई जानकर कि आँखों के इस जहान में अन्धो का कहीं जिक्र नहीं था।

२

सुबह क़रीब ग्यारह बजे हमारी रेलगाडी राजधानी एक्सप्रेस उडुपी कस्बे पहुंची। हमने एक मित्र को स्टेशन पे अलविदा कहा, जिनको दिन भर अल्लेप्पी तक की यात्रा अभी और करनी थी। राजधानी एक्सप्रेस का रुतबा सरकारी अफसरों की अम्बेसडर कार की तरह होता है, जिसके लिए लोकल और पैसेंजर रेलगाड़िया लाल बत्ती पर उसके गुजर जाने का इंतज़ार करती रहती है। खैर, शोध सम्मलेन में ठहरने और खाने-पिने का अच्छा इंतेज़ाम था। दैनिक क्रिया करने के बाद शहर भ्रमण करने का विचार हुआ। दिल्ली की प्रदूषित आबो-हवा से तंग आये दोपहर को एक बजे ही उडुपी की सड़को पर निकल पड़े। खबर थी कि तटीय कस्बो में नवम्बर के आखिर तक गर्मी रहती है, मगर अहसास नहीं था इतनी तप्त होगी। सोशल मीडिया के शिकार राहगीरों की तरह स्थानीय खाने के जायके की खोज और जद्दोजहद में एक पहर बाबा गूगल के साये में ही बीत गया। आखिरकार तय हुआ कि हल्का-फुल्का भोजन करके तट दर्शन किया जाये। स्थानीय बस से तट तक का सफर तय हुआ। लोगो का बर्ताव उम्मीद से ज्यादा अच्छा लगा। चाय और जलपान के बाद तट पर बैठकर तस्वीरें ली गयी। अरब सागर के क्षितिज को निहारते हुए शांति के कुछ क्षणों टटोला गया।

नदी और समुन्द्र के तट में मुख्य अंतर यही है कि समतल मैदान की नदी की शांत लहरों के किनारे बैठकर आबिदा प्रवीण या मेहदी हसन या जगजीत सिंह की मौसीक़ी के जादू में खोया जा सकता है, खोया जा

सकता है बुल्लेह शाह और बाबा फरीद के क़लामो में, जिनको पिछली व इस सदी के फनकारों ने फिर से जनमानस की स्मृति में जिन्दा कर दिया। खुसरो के संगीत के जादू पर दो प्यार के आंसू भी गिराए जा सकते है, बुकोव्स्की की कोई कविता पढ़ी जा सकती है, रूमी की शायरी गुनगुना सकते है, कमलेश्वर या खुशवंत सिंह का कोई उपन्यास पढ़ सकते है। कइयों का मानना है कि दो कश लगाने के बाद दस्तोवस्की की *नोट्स फ्रॉम अंडरग्राउंड* भी पढ़ी जा सकती है। मेरा मन किया अज्ञेय की *हिरोशिमा* पढ़ने का। मगर फिर सोचा टॉलस्टॉय की *काकेशस के कैदी* का कोई मुक़ाबला ना होगा। अर्शे पहले बागमती के तट पे बैठकर भूपेन हज़ारिका का *महाभाऊ ब्रह्मपुत्र* सुना, जिसे कुछ बरस बाद असम में आयोजित 'नदी त्यौहार' के दौरान अंगराग महंत उर्फ़ पेपोन ने हमारे समय के सुप्रसिद्ध संगीतकारों के साथ मिलकर गाया था। बागमती के किनारे बैठे मित्र ने नदियों पर लिखे गए रोचक गीतों का दिलचस्प इतिहास बताया। मिसिसिपी से लेकर वोल्गा तक दुनिया की हर नदी के बारे में संगीत की धूंनो के माध्यम से फनकार अपना प्रेम और अपनापन जताते आये है। समुन्द्र, दूसरी ओर, शक्ति का प्रतिक लगता है, ऊर्जा भरी हिंसक लहरे। स्वाभाविक ध्यान आया वास्को डी गामा की नावों का, नाविकों का, शायद उनके रसोइयों का। कुछ ही सो किलोमीटर दक्षिण के कोझिकोड के तट पर 'मलेच्छ' उतरे होंगे कुछ शताब्दियों पहले, जब इतिहास 'मध्यकाल' से 'आधुनिक' काल की करवट ले रहा होगा। पर उत्तर हमेशा उत्तर में होता है। उत्तर वाले उत्तर की ओर को उत्तारू रहते है। कुछ ही सालो बाद उडुपी से कई सो किलोमीटर उत्तर में स्थित गोवा में वास्को डी के पदचिन्हो पर आने वाले लड़ाके, बनिए, लुटेरे व पण्डे टेंट लगाने लगे होंगे।

टहलने और जलपान करते-करते शाम की लालिमा घिर आयी। जहाँ आधा दशक पहले पुडुचेरी के सूर्योदय की लालिमा के लिए रात भर जागकर सुबह जल्दी तट को दौड़ते थे, वहीं पच्छिम के तटों पर खड़े होकर सूर्यास्त देखना उतना ही रोमांच और विषाद पैदा करने वाला था। जिज्ञासा हुई कि सूर्योदय और सूर्यास्त जैसे रोजाना के नज़ारे क्या सच में रहस्यमयी होते है ? पहले सूर्योदय को कभी सहारा नहीं गया, तस्वीरें नहीं ली गयी। हालाँकि, बचपन में थार के धोरो में भोर के समय उठ कर पूर्व की लाल-पिली लालिमा से बदन में एक तरंग सी उठ जाती थी। फ़र्क़ महज इतना था कि उन नज़ारो को कभी फलसफे या शृंगार रस से नहीं जोड़ा, ना ही तस्वीर लेने कि जरूरत महसूस हुई। एकाएक सूजन सोंटाग का ख्याल आया कि समकालिक व्याख्या और अर्थ के लिए कला का व्याकरणीकरण करना उसके कामुक पहलुओं को चुप कराना है। हमारी इंसानी फितरत एक नज़ारे का नरसंहार कर के, विवश कर देती हमें नास्टैल्जिया में जाने को, और देखते ही देखते हाल बन जाता है माज़ी, दर्शक हक़ीक़त से फासले पर होकर, खुद को जुदा करके, वास्तविकता की चीरफाड़ करने लग जाता है।

ढलते सूरज के साथ हमारा धुम्मकड़ी का पारा भी ढलने लगा, दिन भर की थकन अंधेरे की तरह समाने लगी जिस्म पर। कुछ सोच-विचार के बाद पास ही की दुकान से खाने और 'पिने' का प्रबंध कर पास ही की काली चट्टानों पर महफ़िल जमी। दो-तीन जाम की ताजगी थकन को परास्त करने को उतारू होने लगी। हलके संगीत और अन्तरंग वार्तालाप के बाद दिन को विदाई देकर ख्वाबगाह की ओर रवानगी की।

३

शोध सम्मलेन समापन के बाद यात्रा के अगले पड़ाव के लिए भागमभाग में दोपहर एक बजे वाली रेलगाड़ी तक़रीबन छूटते-छूटते पकड़ी। एक मित्र ने चंद रोज़ पहले ही टिकट बनाने के लिए आगाह कर दिया था। मगर नज़रअंदाजी की कीमत चुकानी पड़ी, जब टीटी ने तीन गुना राशि में टिकट मुहैया करवाई। शाम को पांच बजे के आसपास कन्नूर कस्बे पहुंचना हुआ। सड़को पर हर चंद कदमो बाद लाल झंडे और हसिया-हथोड़े के निशान, शहर की गौरवशाली वामपंथी इतिहास के जीते जागते उदहारण थे। आज़ादी के पहले से ही कन्नूर के ऐतिहासिक 'पार्टी ग्रामम' क्रन्तिकारी सोच और आंदोलनों की कर्मभूमि रही है। वामपंथियों से लेकर कांग्रेस नेताओ तक सभी ने यंहा पर नमक आंदोलन, भारत छोडो आंदोलन इत्यादि में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी।

केरल कई तरह की पहेलियों वाला प्रान्त है। मेरे जैसे राजस्थानी के लिए हरे-भरे खेत, जंगल और जगह-जगह पानी के सोते व नदी-नाले विस्मय कर देने वाले थे। यहाँ उत्तर की तरह शहर और देहात का फ़र्क़ रात-दिन के फ़र्क़ की तरह नहीं लगता। गाँव, गाँव नहीं प्रतीत होते; ज्यादातर गाँवों और छोटे कस्बो में इमारते और बाजार शहर की भांति संपन्न प्रतीत होते है। दूसरी ओर ज्यादातर शहरो में ना तो उतनी गन्दगी है, ना ही भीड़भाड़ है, ना ही फूहड़ भरी चमक-दमक। स्टेशन पर टैक्सी वाले हाथ और कॉलर पकड़ने को नहीं दौड़ते। कार वाला तुम्हारी जबान सुनकर ज्यादा पैसे नहीं हड़पता। करीब-करीब दस बजे शहर खुद आराम करने चला जाता है, बाक़ायदा नींद गर ना ही लेता हो।

शाम को सफ़र के हमराही नमितोवस्की के पुराने साथी की मेहंदी रात में शरीक होने के लिए तैयारियाँ हुई। करीबन नौ बजे शादी स्थल पहुंचे। बताया गया कि परिवार ना सिर्फ वामपंथी विचारधारा मानते है बल्कि उसूलो पर अमल भी करते है। गोयाकि शादी समारोह बिलकुल साधारण लगा। चंद रिस्तेदारो और मेहमानो को आमंत्रित किया गया था और हम बिना बुलावे के अब्दुला दीवाना थे। पूरी शादी में ऐसा कोई रीती-रिवाज नहीं किया जिसमे धार्मिक अनुष्ठान हो। ये भी जाना कि पिता ने जन्म से ही बच्चो के जन्म प्रमाण पत्र में धर्म के

कॉलम में 'नास्तिक' लिखवाया। घर के प्रवेश द्वार क पास भिन्न- भिन्न फलो के ज्यूस का बंदोबस्त था। सामने के आंगन में स्टेज और संगीत का प्रबंध था, जंहा अधेड़ उम्र के चाचा माइक पे मलयालम के साथ-साथ बॉलीवुड के हिंदी गाने भी गुनगुना रहे थे। सफ़ेद पतलून और लाल कमीज़ इनशर्ट किये हुए गीतकार को देखकर पुराणी फिल्मो की याद आ गयी। गाना शुरू हुआ ...आपकी नज़रो ने समझा प्यार के काबिल मुझे..। उनके उपरांत एक सफ़ेद दाढ़ी और मोटा काला चश्मा पहने उम्रदराज शख़्स, जिनको देखकर लगा कि अपने ज़माने में स्थानीय वामपंथी विचारक रहे होंगे, ने बहुत ही मधुर आवाज में मलयालम में शास्त्रीय संगीत की प्रस्तुति दी। अल्फ़ाज़ एक भी समझ में ना आने के बावजूद भी थोड़े-बहुत शास्त्रीय संगीत के इल्म के सहारे उनके सुरो और आवाज के कायल हो गए। कुछ बच्चो ने व्यापारिक तौर पर सफल फिल्मो के हिप-हॉप संगीत की प्रस्तुतियाँ दी। स्वादिष्ट खाने की खुशबु ने थोड़ी ही देर में खाने के टेंट की तरफ खिंच लिया। खाने से फ़ारिग होके, हालाँकि समारोह चल ही रहा था, आधी रात के करीब शुभरात्रि बोलकर निकल ही रहे थे कि एक मोहतरम तौफे का थैला लेकर आये और हाथ में थमा दिया। रास्ते में देखा तो पाया कि थैले में एक शराब की बोतल थी।

रात भर के आराम के बाद सुबह दस बजे शादी के गंतव्य स्थान पहुंचे। बड़ा अचरज हुआ कि मैरिज हॉल की बजाय शादी के लिए कम्युनिस्ट पार्टी के किसी कन्वेंशन सेंटर को चुना है। खैर, सभी लोगो को अपनी पारम्परिक पोशाकों में देखकर अच्छा लगा। बड़े ही ज़ायक़ेदार खाने का लुफ़्त उठाकर दोपहर को सुस्ताने चले गए। अब, जब शादी कि औपचारिकताएँ ख़तम हो चुकी थी, हमारे पास दो दिन बचे थे घूमने को। मंसूबा ये बना की एक दिन शहर घुमा जाये और एक दिन माहे कस्बे की यात्रा की जाये, जो कन्नूर से महज तीस किलोमीटर दूर है। केंद्र शासित प्रदेश पुड्डुचेरी चार अलग-अलग कस्बो को मिलाकर बना है। माहे केरल में, यानम तेलगू प्रदेश में, और कराईकल व पुड्डुचेरी तमिलनाड में स्थित है। आखिरी में माहे का मंसूबा कामयाब ना हो पाया।

अगले रोज़ भोजनोपरांत कन्नूर के जाने-माने किले सेंट एंजेलो पहुंचे। मालाबार में सेंट एंजेलो के किले का अपना जलवा हुआ करता था। राजस्थान के किलो और हवेलियों से बिलकुल अलग पाया। समझना भी मुश्किल नहीं है कि पुर्तगाली व्यापारियों को आलीशान महलो और चोबारो कि बजाय अपने सेना के गोला-बारूद रखने के लिए चारदीवारी चाहिए होंगी। परन्तु किले की जगह का चुनाव बड़ा ही रणनीतिक तरह से किया गया होगा। अरब सागर के तट का वो भाग चुना जो समुन्द्र के अंदर की ओर प्रायद्वीप की शक्ल में है। चारदीवारों पर तोपे राखी गयी है, जिनका निशाना पानी की ओर होना दिखा रहा था कि पुर्तगालियों के दुश्मन समुन्द्र वाले थे, ना कि बगल की जमीन वाले। पत्थर के ऊपर लिखा विवरण बता रहा था कि पहले डच्चो

ने, आखिरकार बिर्तानियो ने पुर्तगालियों से छीनकर किले पे कब्ज़ा कर लिया था। किले की चारदीवारी पर खड़े होकर समुन्द्र को निहारते हुए सहसा पुराने प्रोफेसर के शब्द याद गए - लैंड डिवाइडस पीपल, ओसियन युनाइटस।

साँझ होने से एक पहर पहले तट का रुख किया। तट के किनारे लगे फल वाले ठेले के मोहपाश से खुद को नहीं बचा पाए। आम तौर पर तटों के पास ये ठेले देखने को मिलते है जहाँ कांच के जार में पानी में सिरका, नमक, हरी मिर्च के टुकड़ो के साथ विभिन्न फलो की फाँकिया डुबो कर रात भर के लिए रख दिया जाता है। अगले दिन उनको खाने में जो जायका होता है - तौबा! अनानास के ऐसे ही कई फांको का लुफ़्त उठाया गया। समुद्र में नहाना अपने आप में थेरेपी लेने से कम नहीं लगा, पुरे दिन की थकान चली गयी। डूबते हुए सूरज की लालिमा चेहरे पर पड़ रही थी। तट की बालू पे बैठने के बाद अंदर का 'प्लेटो' बहार आने को आतुर हो रहा था। हर यात्रा में वो पड़ाव आता है जब चंद लम्हे ऐसे आते है कि मन में कई अजनबी भावो का अम्बार लग जाता है। ठीक तभी वो मौका आता है चरम आज़ादगी का। ऐसे ही भावो का सैलाब मन को डुबोने लगा। इस सैलाब ने भटकते हुए मन को परास्त कर दिया, बेबस कर दिया अंदर के 'मैं' को । तारकोव्स्की के 'स्टॉकर' की तरह सब उपापोह छोड़कर जमीन को गले लगाकर लिपट जाने का मन किया, मन किया कान जमीन पर लगाकर लहरों की कम्पन को सुनाने का।

सूरज डूब चूका था। आखिरी की धुंधली रौशनी भी खुद को समेटकर अरब सागर के क्षितिज में विलुप्त होने जा रही थी। तट पर बच्चो के खिलखिलाने की आवाज भी मंदिम हो चली थी। मन खड़ा हुआ और शरीर को सहारा देकर उठाने लगा । मंद कदमो से चल पड़े स्टेशन की और। कानो में ना जाने क्यों गीत गूंज रहा था ।

.....समय ओ, धीरे चलो
बुझ गई राह से छाँव
दूर है दूर है, पी का गाँव
धीरे चलो धीरे चलो....

****